SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भगवद्गीता में योग का स्वरूपः एक अध्ययन

पिंकी निशा, पीएच–डी., संस्कृत विभाग
पटना यूनिवर्सिटी, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
पिंकी निशा, पीएच–डी.
E-mail : nishamrit2020@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 14/04/2025
Revised on : 14/06/2025
Accepted on : 24/06/2025
Overall Similarity : 02% on 16/06/2025

शोध सार

भारतीय योग–दर्शन में योग को विशेष रूप में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ 'चित्तवृतियों का निरोध' है। यह शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु भगवद्गीता में इसका प्रत्येक अर्थ ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करता हुआ दिखाई देता है। सम्पूर्ण भगवद्गीता के केन्द्रीय चिंतन में 'योग' शब्द निगूढ़ हो गया है। भगवद्गीता के पुराण– पुरुष श्रीकृष्ण विषाद–योग से ग्रसित, द्वन्द्व और मोह में फँसे अर्जुन को गीता के समस्त अध्यायों में ज्ञान–योग, भक्ति –योग,कर्म–योग और राज–योग का उपदेश देते हुए उसे ब्रह्माण्डीय चेतना से जोड़ते हैं। यह तभी संभव है जब योग की परम अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि अथवा अद्वैत योग को प्राप्त कर लें। इस योग के द्वारा साधक उस परम चेतना से जुड़ते ही ईश्वर तुल्य हो जाता है और परम पद को प्राप्त करता है। यह परम पद ही भगवद्गीता का परम लक्ष्य है। यही सन्देश कृष्ण गीता में अर्जुन को दे रहे हैं।

मुख्य शब्द

भगवद्गीता, चेतना, योग, साधना, ज्ञान, कर्म.

प्रस्तावना

भारतीय वैदिक दर्शन में भगवद्गीता का स्मरण हम एक स्मृति ग्रन्थ के रूप में करते हैं जिसे महाभारत के भीष्म–पर्व में प्रमाण स्वरूप देखा जा सकता है। महाभारत ग्रन्थ जिसे जय संहिता के नाम से भी जाना गया है, भारतीय दर्शन मीमांसा का एक अत्यंत ही प्रामाणिक और उपजीव्य ग्रन्थ है। भारतीय दर्शन के अनेक सिद्धान्त अनेक विचार और अनेक स्रोत हमें महाभारत में देखने को मिल जायेंगे। भगवद्गीता भी उसी स्रोत से आया हुआ एक ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ है,जो अपने बोध और दर्शन के लिए प्रस्थानत्रयी के रूप में पूज्य है। भगवद्गीता में वस्तुतः सांख्य, कर्म, भक्ति और

वैराग्य की उत्कट विवेचना है जिसके सूत्रधार पुराण–पुरुष श्री कृष्ण हैं जिन्हें उनके चिंतन और पुनीत कर्म के लिए भारतीय मनीषा ने भगवान तक की संज्ञा दी है ।

विषय भूमि

भगवद्गीता में कुल 18 अध्याय हैं और इन प्रत्येक अध्याय में आध्यात्म की किसी– न–किसी गूढ़ साधन को योग से जोड़कर देखा गया है। जब हम योग शब्द का विवेचन करते हैं तब इस योग शब्द के अर्थ, पर्याय और भेद अलग–अलग संदर्भो में हमें देखने को मिलते हैं। प्रत्येक अध्याय का पर्यवसान योग शब्द से अभिहित करके किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण भगवद्गीता का केन्द्रीय चिंतन एक योग शब्द में रूढ़ हो गया है। गीता का प्रथम अध्याय अर्जुन विषाद–योग के नाम से है। यहाँ योग का अर्थ पर्याय और भेद अन्य अध्यायों के परितः अत्यंत भिन्न है। अर्जुन का विषाद और उसका उस विषाद से योग, प्रथम अध्याय में लक्ष्य है। अर्जुन अपने मूल स्वभाव, मूल कर्म और मूल कर्त्तव्य से च्युत हो गया है। उसने एक ऐसे विषाद से योग कर लिया है जिस विषाद की भर्त्सना कृष्ण अगले अध्याय में कर रहे हैं। यहाँ अर्जुन की चेतना का योग एक गहन विचार से हो गया है जो उसे द्वन्द्व और मोह में डाल देता है,और वह मोह से ग्रस्त होकर कृष्ण को ही उपदेश करने लगता है। विषाद से आक्लांत होकर वह कृष्ण से कहता हैः

गाण्डीवं स्त्रसते हस्तात्वक्चौव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातु भ्रमतीव च मे मनः।।[1]

हे केशव! मेरे हाथ से गाण्डीव छूट रहा है और मैं भ्रमित हो रहा हूँ, अतः मै युद्ध नहीं कर सकता। अर्जुन ऐसा कहकर शान्त हो जाते हैं । जब कृष्ण ने देखा कि अर्जुन विषाद से योग कर लिया है तब उन्होंने उसके चिन्तन को सांख्य की ओर मोड़ दिया, जिसे द्वितीय अध्याय में सांख्य योग के नाम से भी जाना जाता हैं। कृष्ण, अर्जुन से कहते है कि जब चेतना का योग ही करना है तब विषाद से क्यों किया जाए? जो समस्या सामने है उसका समाधान विषाद से न करके शुद्ध ज्ञान से किया जाए। किसी भी समस्या का शुद्ध सांख्य से योग होते ही पूरी तरह से उसका गुण–धर्म बदल जाता है फिर वह समस्या अपने समाधान की ओर अग्रसर हो जाती है। कृष्ण ने प्रत्यक्ष सांख्य का उपदेश देकर अर्जुन को इस ब्राह्मी अवस्था का ज्ञान प्रदान किया जिसके संसर्ग से मनुष्य का जीवन धन्य हो जाता है। कृष्ण, अर्जुन से कहते हैं – हे अर्जुन! तू इस विषाद–योग का त्याग कर और निष्काम भाव से कर्म का आचरण करते हुए सत्य का संधान कर। दुःख और सुख को सामान समझ कर अपने धर्म का अनुशीलन करते हुए सत्य को जानने प्रयास कर।

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभो जयाजयो।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवम पापमवाप्स्यसि।।"[2]

सांख्य योग के विषय में अर्जुन अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कृष्ण से सांख्य का गूढ़ रहस्य समझते है। अब अर्जुन की चेतना विषाद से हटकर सांख्य में स्थिर हो जाती है। कृष्ण कहते हैं – जब कोई व्यक्ति अपने सम्पूर्ण चेतना के साथ ज्ञान में स्थिर हो जाता है तभी उसे वस्तुतः कर्म करने का अधिकार प्राप्त होता है। सांख्य दर्शन में स्थिर बुद्धि ही कर्म की प्रेरणा को उसकी गति को और उसके फल को पूरी तरह से समझने में सक्षम होती है। जो मनुष्य ज्ञान में स्थिर हुए बिना कर्म का अनुष्ठान करता है उसका वह कर्म, सुख और दुःख मिश्रित क्लेश कारक कर्म है। वास्तव में कर्म, अकर्म और विकर्म के तत्त्व को वही ज्ञानी समझ पाता है जिसकी बुद्धि का योग ज्ञान से हो गया है।

भगवद्गीता में योग का वास्तविक अर्थ है मनुष्य का अपने देहाभिमान से हटकर अपने स्वरूप में स्थिर हो जाना। अपने वास्तविक स्वरूप से हटकर जिस मनुष्य ने बाह्य चीजों से योग कर लिया है, वह वास्तव में योग नहीं है। वह देहाभिमान का अव्यय है। इसी आत्मस्मरण को कृष्ण, योग की संज्ञा देते हैं और यही आत्मस्मरण विषाद, सांख्य और कर्म से होता हुआ चौथे अध्याय में आ जाता है, जहाँ कृष्ण अर्जुन से कहते हैं – हे अर्जुन! इसी

अविनाशी योग को मैंने जगत के आदि में सूर्य से कहा थाः

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।[3]

कृष्ण अर्जुन से यहाँ कहते है मनुष्य के चेतना का एक ऐसा भी क्षण भी आता है जब वह ज्ञान और कर्म दोनों से मुक्त हो जाता है। इस दोनों से मुक्त होकर चेतना एक असंग अवस्था से योग करता है। चेतना की इसी असंग अवस्था का विवेचन कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय में किया है। इसी अवस्था में ज्ञान और कर्म के समस्त प्रवाह ईश्वर में लीन हो जाते हैं और चेतना निष्कलंक अवस्था में आ जाती है। इस अवस्था को ज्ञान की परम पवित्र और शुद्ध अवस्था कहा गया है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं दृहे अर्जुन! ऐसी असंग अवस्था में जब कोई चेतना गति करती है तब संसार का कोई भी पाप, ज्ञानी के हृदय लेश मात्र भी स्पर्श नहीं करता है।

"अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यरू पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।।"[4]

हृदय की इसी असंग अवस्था को प्राप्त करने के लिए भगवद्गीता के अन्य अध्यायों में साधना का विवेचन किया गया है,और यही साधना विभिन्न नामों से, विभिन्न विधाओं से योग के अंतर्गत आती है। जब चैतन्य असंग अवस्था में होता है तब कर्म का ताप पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। कर्म के ताप समाप्त होते ही साधक की चेतना का योग व्यष्टिगत न रहते हुए समष्टिगत हो जाता है,और सब भतों में वह अपना ही दर्शन करता है, अर्थात् उसकी देहस्थ चेतना का योग तब ब्रह्मांडीय चेतना से हो जाता है। इस अवस्था को कृष्ण अध्याय 5 के श्लोक 25 में कहते हैंः

"लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।"[5]

इस ब्रह्माण्डीय चेतना के योग में कुछ आयाम हैं, कुछ इसके विधान हैं, जिसका उल्लेख भगवद्गीता के छठे अध्याय में किया गया है। एक तरह से उस ब्रह्माण्डीय चेतना के योग की विधि छठे अध्याय में दी गई है, जिसमें कृष्ण कहते हैं – हे अर्जुन! मन और इंद्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला वह आशारहित योगी अपने आत्मा को नित्य परमात्मा में लगावे। वैदिक शास्त्र में इसी ब्रह्माण्डीय चेतना को परमात्मा के नाम से जाना गया है।

"योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।"[6]

यहाँ अष्टांग–योग की विधि का अनुपालन साधक के लिए आत्मा और परमात्मा के योग के रूप में देखा गया है। जब साधक की चेतना का योग पूरी तरह से परमात्मा से हो जाता है तब साधक की चेतना एक भिन्न आयाम में प्रवेश करती है जिसे हमारे वेदों में विज्ञान या प्रज्ञान की संज्ञा दी गई है। इस प्रज्ञान की अवस्था में साधक उस परम चैतन्य से जुड़ जाता है। यहाँ सामान्य लोग उसके भाव को नहीं समझ पाते हैं,क्योंकि उस अवस्था में वह साधक ईश्वर तुल्य हो जाता है। इसी अवस्था के लिए कृष्ण ने सातवें अध्याय के 25वें श्लोक में इस सत्य को अभिव्यक्त किया हैः

"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।"[7]

अपने स्वरूप की अखंड स्मृति ही योग है, जो विषाद से प्रारंभ होकर आत्मस्वरूप के स्मरण पर समाप्त होती है। जब हमारी चेतना का योग एक उच्चतर आयाम में स्थित हुई चेतना से होता है,तब उसी दशा को भारतीय दर्शन में अद्वैत के नाम से जाना जाता है। उसे परम चैतन्य की अवस्था को भगवद्गीता में अव्यक्त भाव के नाम से जाना गया है जिसको कृष्ण ने भगवद्गीता के आठवें अध्याय में अभिव्यक्त किया है। वह अव्यक्त भाव अत्यंत पुरातन और सनातन है। कृष्ण कहते हैं – हे अर्जुन! जो सामान्य चेतन के अव्यक्त भाव हैं, उस भाव से भी परे एक अव्यक्त भाव और है, जब तू इस दिव्य भाव को प्राप्त कर लेगा तो अमर हो जाएगा अर्थात तू साक्षात ब्रह्म ही हो जाएगा।

"परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।"[8]

अध्याय के अंतिम श्लोक में भगवान कहते हैं कि – हे अर्जुन! योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों को पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो पुण्य फल कहा गया है, उन सभी का उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है।

"वेदेषु यज्ञेषु तपरूसु चौव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।"[9]

यह जो परम पद है, वास्तव में यही भगवद्गीता के योग का लक्ष्य है। इसी योग को राजयोग या राजविद्या के नाम से भी जाना गया है। इसी राजयोग का उपदेश कृष्ण बार–बार अर्जुन से नवें अध्याय में कर रहे हैं:

हे अर्जुन! दृष्टिदोष रहित भक्त के लिए मैं इस परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान को भली–भांति कहूंगा,जिसको जानकर तू दुःख रुपी संसार से पार हो जाएगा। यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा,अत्यंत गोपनीय, अत्यंत पवित्र, अत्यंत उत्तम, प्रत्यक्ष फल देने वाला धर्म से युक्त अविनाशी और साधन करने में सुगम है।

"श्रीभगवानुवाच इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।"[10]

"राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।"[11]

जब कोई साधक, साधना की उच्चतर अवस्था में होता है तो उसके हृदय में प्रकट होने वाला ब्रह्म भाव, अद्वैत की वह चरम अवस्था है जहां संसार के भेद और संसार के कल्मष सभी समाप्त हो जाते है। इस अवस्था में आने के बाद साधक को 'एकोहम् बहुष्यामि' का अनुभव होता है जहाँ उसे अनुभव होता है कि हूँ तो मैं ही एक लेकिन मेरी ही विभूतियाँ सर्वत्र विद्यमान हैं। इन विभूतियों का उल्लेख गीता के दसवें अध्याय में किया गया है। जहाँ कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि – हे परन्तप! मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है लेकिन फिर भी मैं तुझे बार–बार इसे कहूंगा, जिससे तुझे अपने स्वरूप की अखंड स्मृति का बोध हो जायेगाः

"नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।"[12]

कृष्ण ने अर्जुन को जब इस उच्चतर अवस्था का उपदेश दिया और उसे विषाद से निकालकर अद्वैत की परम अवस्था की ओर लेकर आ गए, तब अर्जुन को कुछ संदेह हुआ और वह चिंतन करने लगा कि जो सत्य मुझे कहा गया है उसका अनुभव कैसे हो उसने अपना संदेह कृष्ण को बतलाया। कृष्ण ने अर्जुन से कहा – हे अर्जुन! मुझे तू अपने इन प्राकृतिक नेत्रों से नहीं देख सकता और ना ही किसी प्रकार देखने में समर्थ है इसीलिए मैं तुझे वह दिव्य नेत्र देता हूँ जिसके द्वारा तू मेरी उसे अलौकिक योग शक्ति का साक्षात्कार करेगा जिसका मैं तुझे उपदेश दे रहा हूँ।

"न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुरू पश्य मे योगमैश्वरम्।।"[13]

जब अर्जुन ने उस परम चैतन्य की अवस्था का अनुभव किया तो वह भयभीत और कंपायमान हो गया और कृष्ण से प्रार्थना करने लगा कि मुझे उसी प्राकृतिक अवस्था की ओर ले चलो, अभी मेरा अंतःकरण इतना समर्थ नहीं है कि मैं उस परम अद्वैत के प्रवाह का आवेग सहन कर सकूं। अर्जुन ने इसी भाव को गीता के अध्याय 11 श्लोक 45 में अभिव्यक्त किया हैः

"अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास।।"[14]

कृष्ण ने अर्जुन से जिस परम दिव्य अवस्था के योग की बात कही है। उस अवस्था का साक्षात्कार कृष्ण के द्वारा अर्जुन को यहाँ कराया गया है। अद्वैत की यह परम अवस्था ही भगवद्गीता के योग का वास्तविक स्वरूप है। बाद के अध्यायों में कृष्ण ने उस परम अवस्था से जुड़े हुए समस्त रहस्यों का विवेचन किया है,जिसमें क्षेत्र–क्षेत्र विभाग, गुणत्रय विभाग, पुरुषोत्तम योग, दैवीय–संपत्ति योग, श्रद्धात्रय विभाग योग और मोक्ष–संन्यास योग का गंभीर विवेचन विद्यमान है। भगवद्गीता का यह समग्र विवेचन और ज्ञान कृष्ण के मुख से सुनकर अर्जुन को अपने अखंड स्वरूप की स्मृति हो जाती है। जिस स्मृति के योग के लिए कृष्ण बार–बार अर्जुन से कह रहे थे वही स्मृति उसे प्राप्त हो जाती है तब अर्जुन कृष्ण से कहते हैं – हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मेरा अंतःकरण पूरी तरह संशय से परे है।

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।"[15]

निष्कर्ष

वस्तुतः भगवत गीता का मूल मंतव्य योग की उसे परम अवस्था का व्याख्यान है जिसे योग–दर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि, निर्बीज समाधि तथा धर्म–मेघ समाधि के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। एक ऐसी समाधि की अवस्था जहाँ धर्म मेघ बनकर संसार से संतप्त अंतःकरण को परम शांति प्रदान करता है। इसी अवस्था के योग का नाम ही अद्वैत योग है,जिसका संदेश कृष्ण गीता में अर्जुन को दे रहे हैं। भगवद्गीता में जितने भी छोटे–बड़े योगों की चर्चा है, जैसे कर्मों में कुशलता ही योग है (योगःकर्मसु कौशलम्) समता ही योग है (समत्वं योग उच्चते) आदि सबका प्रयोजन अर्जुन को इस अखंड स्मृति की ओर लेकर चलता है, जिसका उपदेश कृष्ण पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अर्जुन से कर रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. श्लोक संख्या 30 / अध्याय 01 / पृ. 23 / श्रीमद्भगवद्गीता (जयदयाल गोयन्दका) गीताप्रेस गोरखपुर / गोविन्द भवन / (संवत 2068), कोलकाता का संस्थान, 273005,
2. श्लोक संख्या 38 / अध्याय 02 / पृ. 54 / वही।
3. श्लोक संख्या 01 / अध्याय 04 / पृ. 99 / वही।
4. श्लोक संख्या 36 / अध्याय 04 / पृ. 120 / वही।
5. श्लोक संख्या 25 / अध्याय 05 / पृ. 139 / वही।
6. श्लोक संख्या 10 / अध्याय 06 / पृ. 148 / वही।
7. श्लोक संख्या 25 / अध्याय 07 / पृ. 184 / वही।
8. श्लोक संख्या 20 / अध्याय 08 / पृ. 199 / वही।
9. श्लोक संख्या 28 / अध्याय 08 / पृ. 204 / वही।
10. श्लोक संख्या 01 / अध्याय 09 / पृ. 206 / वही।
11. श्लोक संख्या 02 / अध्याय 09 / पृ. 206 / वही।
12. श्लोक संख्या 01 / अध्याय 09 / पृ. 245 / वही।
13. श्लोक संख्या 40 / अध्याय 10 / पृ. 251 / वही।
14. श्लोक संख्या 08 / अध्याय 11 / पृ. 275 / वही।
15. श्लोक संख्या 73 / अध्याय 18 / पृ. 413 / वही।

****